

अष्टांग योग

यम

योगसूत्र में यम के पाँच भाग किये गये हैं -
अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।
अहिंसा - मन, वाणी और शरीर से किसी प्राणी को किसी प्रकार का दुःख न देना अहिंसा है।
हिंसा तम का द्योतक है, यह अभिधात और मति-
रोध की उत्पन्न करने वाला होता है। आश्विन
में उसे पापकर्म बताकर त्यागने के लिए कहा
गया है, इसे सद्वृत्त के रूप में वर्णित किया
गया है। तथा रसायन सेवन से पूर्व भी स्व
आचाररसायन के अन्तर्गत अहिंसा का वर्णन
किया गया है।

सत्य - योगसूत्र में कहा गया है -

कि सत्य पर दृढ़ होने से व्यक्ति में क्रियाफल
के आश्रय का भाव आजाता है। आश्विन में भी
आचाररसायन में सर्वप्रथम सत्यवादिनम् ही कहा
गया है। सद्वृत्त में झूठ न बोलने के लिए
कहा गया है।

अस्तेय + अस्तेय का अर्थ है,

चोरी का अभाव जब व्यक्ति में चोरी के अभाव
अर्थात् चोरी न करने की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती
है, तब उसके सामने समस्त रत्न स्वयं पकड़
होने लगते हैं, आचार्य वाग्भट ने अस्तेय को
दशविध पापकर्म के अन्तर्गत बताया है और
शरीर मन एवं वाणी से त्यागने के लिए कहा
गया है।

ब्रह्मचर्य - जीवन के तीन उपक्रमों में
ब्रह्मचर्य की गणना की गई है। आचाररसायन में
मध्य एवं मेषुन से निवृत्त रहने के लिए बताया
गया है। ज्वर चिकित्सा में आचार्य चरक ने
कहा है कि ब्रह्मचर्य के द्वारा ज्वर से छुटकारा

मिलता है। योगसूत्र में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य पर
दृढ़ होने पर कीर्ति लागू एवं अपूर्व शक्ति का
प्रदुर्भाव होता है।

अपरिग्रह - परिग्रह का अर्थ है
मोह। उसके विपरीत अपरिग्रह की स्थिति व्यपन्न होने
पर वैराग्य की उत्पत्ति होती है और इससे
पूर्वजन्म जैसे दुःखों का भी ज्ञान हो जाता है।
सदबुद्धि प्रकरण में इन करने के लिए लीम-मोह न
करने के लिए कहा गया है। संसृष्ट की प्रकृति
का त्याग ही अपरिग्रह है।

नियम

योगियों ने नियम के भी पाँच भाग बताये हैं:-
शौच - चिकित्साचक्रवर्त्ता के संदर्भ में आचार्य
चरक ने उत्तम वैद्य के चार गुणों में शौच
को एक प्रधान गुण माना है, शौच से अधिक
वाचिक एवं मानसिक शुद्धता का अभिप्राय है।
इन्हीं ही योगी बाह्य बुद्धि एवं आभ्यन्तर बुद्धि
के नाम से कहण करते हैं। आभ्यन्तर में बाह्य
बुद्धि के लिए अंग प्रक्षालन, स्नान, दन्तध्यावन,
कक्कासह, गण्डूष आदि कर्म बताये गये हैं।
और आभ्यन्तर बुद्धि सामाजिक एवं मानसिक स्तर
धी-धृति-स्मृति का ज्ञान, व्यवहार आदि से होते हैं।

संतोष - बाह्य की कष्ट
उत्पन्न करने वाली में श्रेष्ठ कहा गया है। यह संतोष
का विपरीतार्थक है उसे धारणीय वेशों की गणना में भी
गिना गया है। योगसूत्र में बाह्य के विपरीत भाव
संतोष की सर्वोत्तम सुख की संज्ञा दी गई है।

तपः - स्वधर्म पालन के लिए व्रत-उपवास आदि कठिन कार्य करना तप है। उसके अभ्यास से शरीर, इन्द्रिय एवं मन का मल नष्ट होता है। आचारसंग्रह में अन्तर्गत कहा गया है कि प्रतिदिन जप, शौच, दान एवं तपस्या करने चाहिए तथा देवता, गौ, ब्राह्मण आचार्य एवं गुरु की सेवा में श्रम करना चाहिए। आचार्य सुश्रुत ने भी तीन बार गायत्री का जप करने के लिए कहा है।

स्वाध्यायः - स्वाध्याय दिनचर्या का एक भाग है। मातः कल उठकर दोपहर में एवं रात्रि में स्वाध्याय करने के लिए कहा गया है, योगसूत्र में कहा गया है कि स्वाध्याय से इन्द्रिय का दर्शन होता है। सुसाहित्य एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन स्वाध्याय है।

ईश्वरपणिधानः - ईश्वर की शरणागति से योगसाधन में आने वाले विघ्नों का नाश होकर शीघ्र ही समाधि निष्पन्न हो जाती है। आसुरवेद में मानस दोष चिकित्सा के रूप में ईश्वर का ध्यान पूजा पाठ बताया गया है। ज्वर आदि की चिकित्सा में भी विष्णुसहस्रनाम जप आदि बताया गया है। दैवव्यपात्रय चिकित्सा का आधार ही ईश्वरपणिधान है।

आसन

आसन से ही आजकल योग सामान्यतया योग का अर्थ कहा जाने है, परन्तु इसे योग के साथ अंगों में से मात्र एक अङ्ग ही समझना चाहिए। छिन्न भाई हठयोग का मुख्य आधार आसन ही है। स्थिर सुखपूर्वक बैठने की योगियों के शब्द में आसन कहा गया है। आसुरवेद में हठयोग में वर्णित आसनों का वर्णन नहीं मिलता, परन्तु यहाँ स्थिर सुखपूर्वक बैठने की अनेक अवस्थाओं का

ठल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम अध्ययन विधि में कहा गया है, कि समस्त पवित्र स्थान में कुम्भक के बँधकर अपने दोष एवं दुष्टियों को दूर करने हेतु तथा दूसरे के दोष एवं दुष्टि समझने के लिए एकत्र मन से बैठना चाहिए। सद्वृत्त के पालन में कुछ ऐसी शरीर की अवस्थाएँ बतलाई गई हैं जिनमें अधिक देर तक न बैठने के लिए कहा गया है। जैसे छुट्टों की ऊपर उठकर देर तक न बैठें। शरीर की टेढ़ा बकरूँ, झींक, भोजन, शयन आदि न करने के लिए भी कहा गया है।

इस प्रकार आसनों का वर्णन आयुर्वेद में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न रूपों में है, परन्तु ह्योग-सम्बंधित आसन का वर्णन नहीं मिलता है।

प्राणायाम

प्राणवायु का शरीर में प्रविष्ट होना श्वास और बाहर निकलना प्रश्वास है। इन दोनों गतियों का विच्छेद होना अर्थात् श्वास-प्रश्वास स्थिरा का बन्द होना प्राणायाम का सामान्य लक्षण है। आयुर्वेद में वायु को प्राण संज्ञा प्रदान की गई है। वायु की को आयु कहा गया है तथा वायु के द्वारा ही प्राणायाम निमेषादि क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। वायु प्राणायाम क्रिया का सम्पादन कराता है। परन्तु योगोक्त प्राणायाम इस वायु की क्रिया से भिन्न है, क्योंकि इस वायु की क्रिया पर नियंत्रण प्राणायाम कहा गया है। जैसे आयुर्वेद में वायु की यंत्र-तंत्र की धारण करने वाली कही गयी है "वायुः यन्ततन्त्रधारः"। प्राण, उदान, व्यान, समान और अपान की आत्मा का रूप कहा गया है। तथा यही शरीर की सभी घटकों का नियंत्रण एवं सम्पन्न प्रणयन करती है। सभी इन्द्रियों के अपने विषयों में प्रवृत्त करने वाली भी यही है।

हस-मकर वायु के शरीर एवं शरीरावयव को धारण करने वाला - वैष्ण-गति आदि का नियंत्रण एवं प्रणयन करने वाला कहा गया है और इसी वायु की गति पर नियंत्रण पाणावाम शब्द से जना जाता है।

प्रत्याहार

इन्द्रियों की वाह्य वृत्ति से समेटकर मन में विसीन करने के अभ्यास को प्रत्याहार कहते हैं। जामुर्वेद में मन का र्थ बताते समय कहा गया है। कि इन्द्रियों का संचालन करना तथा स्वयं अपने को अपने से ही अहितकर विषयों से रोकना मन के कर्म हैं। इसके साथ ही मन तथा इन्द्रियों को स्वस्थ रखने के लिए कहा गया है कि मन के साथ सभी इन्द्रियाँ स्वाभाविक रूप में वर्तमान रहें, इनमें कोई विकृति न हो, सात्म्य इन्द्रियार्थसंयोग द्वारा बुद्धि से ठीक ठीक पिचार कर कार्यों की उचित रूप से करना, देहा-कल-आत्मा के विपरीत गुरुओं का सेवन न करना तथा इन्द्रियार्थों का अतियोग, मिथ्यायोग और अयोग न करना, प्रज्ञापराध न करना आदि कहा गया है। ये दूसरे शब्दों में "प्रत्याहार" ही हैं।

धारणा, ध्यान एवं समाधि

शरीर के बाहर अथवा शरीर के भीतर किसी एक देश में चित्त की वृत्ति को लगाने को धारणा कहते हैं। और जहाँ चित्त को लगाया जाय उसी एक वृत्ति का लगातार चयन ध्यान है। ध्यान करते समय जब चित्त ह्येयाकार में परिणित हो जाता है, उसके अपने स्वरूप का अभाव हो जाता है। उस समय उस ध्यान को समाधि कहते हैं। किसी एक विषय में इन गति का होना संयम कहलाता है।